प्रतिहार काल में पूजित राजस्थान के कुछ अप्रधान देवी-देवता

डा० दशरथ शर्मा

ईश्वरको सर्वत्र देखने वाले हिन्दू धर्मके लिए सभी पूज्य देव-देवियोंमें ईश्वरत्वकी भावना करना आसान रहा है। चाहे मनुष्य किसी नामसे अपने इष्टदेवका पूजन करे, पूज्य वस्तु वही ईश्वरतत्त्व है। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कह सके हैं :—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ ९.२३ ॥

पूजन निष्काम हो तो श्रेष्ठ है। उसीसे कर्मकी हानि, और मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है किन्तु फल प्राप्तिके इच्छुक व्यक्ति प्रायः अनेक देव मूर्तियोंका पूजन करते ही हैं (७.२०); और उन्हें अपने लक्ष्यानुसार ईश्वरीय नियम द्वारा विहित प्राप्ति भी होती है।

प्रतिहार कालमें वैदिक धर्मानुसारिणी जनता प्रायः विष्णु, शिव, सूर्य और शक्तिकी पूजक थी। इनके एकत्वकी भावना उनके हृदयमें दृढ़मूल हो चुकी थी। अन्यथा यह कैसे सम्भव होता कि पिता एक देवका तो पुत्र अन्य किसी इष्टदेवका पूजन करे? प्रतिहार-राज देवशक्ति विष्णुका तो उसका पुत्र वत्सराज महेश्वरका भक्त था। वत्सराजके उत्तराधिकारी नागभट द्वितीयने भगवतीका पूजन किया तो उसके उत्तराधिकारी रामभद्रने सूर्यका। रामभद्रका पुत्र सम्राट् भोज भगवती-भक्त था; किन्तु अपने अन्तःपुरमें उसने अपनी रानियोंके लिए भगवान् नरकद्विष् विष्णुकी प्रतिमाका स्थापन किया था। महेन्द्रपाल प्रथमने भी भगवतीकी आराधना की; किन्तु उसका पुत्र विनायकपाल आदित्यका और विनायकपालका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय महेश्वरका पूजक था।[1]

ब्रह्माका भी यत्र तत्र पूजन वर्तमान था। किन्तु हरिषेणीय बृहत्कथाकोश, कुवलयमाला, जिनेश्वरीय कथाकोशप्रकरण, उपमितिभवप्रपञ्चा आदि जैन ग्रंथोंके साक्ष्यसे यह सिद्ध है कि प्रतिहार-युगमें ब्रह्मा-पूजकोंकी संख्या प्रायः नगण्य थी। अभिलेखादि पुरातात्त्विक सामग्रीके आधारपर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। ब्रह्मा वेदोंके द्रष्टा हैं। जब वेदों का स्थान प्रायः स्मृतियों और पुराणोंने ग्रहण कर लिया तो सावित्रीपति ब्रह्माके गौरवमें कुछ अपकर्ष होना स्वभावतः निश्चित ही था।

किन्तु पुराणोक्त अनेक देवों और देवियोंका पूजन इस समय खूब बढ़ा। इनमें कुछ शिवकुलमें संख्यात हैं। अमरकोशने शिव और पार्वतीके ठीक बाद गणपतिको लेते हुए विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन आदि उनके आठ नाम दिए हैं जिससे सिद्ध है कि पांचवीं शताब्दी में गणपतिका स्वरूप प्रायः वही था जो अब है और तद्विषयक अनेक पौराणिक कथाएँ पूरी तरह

---

१. विष्णु, शिव, सूर्य आदिके प्रधान देवोंके विवरणके लिए Rajasthan Through the Agos देखें।

२. पृष्ठ, ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसूत हो चुकी थीं। क्षीरस्वामीने उनका 'आखुरथ' नाम भी दिया है। आठवीं शताब्दीके महान् जैन साहित्यकार और दार्शनिक हरिभद्रसूरिने धूर्ताख्यानमें गणपतिके पार्वतीके मलसे उत्पन्न होनेकी कथा दी है। कुवलयमालाकथामें विनायक उन देवताओं में परिगणित हैं जिनका विपत्तिके समय लोग ध्यान करते थे।[२] गजेन्द्ररूपमें अनेक लोकदेवताओंके साथ इनकी चत्वरमें पूजा होती।[१] स्कन्दपुराणादिमें जो इनका विशद वर्णन है वह प्रायः सभी को ज्ञात है।

कक्कुकके घरियाले स्तम्भके संवत् ९१८के प्रथम अभिलेखका आरम्भ विनायकको नमस्कारसे होता है। इसी यशःस्तम्भ पर चतुर्मुख विनायककी सुन्दर मूर्ति है। नृत्य मुद्रामें गणपति की मूर्तियां भी पर्याप्त जनप्रिय रही होंगी। ये हरस, आबानेरी, आदि अनेक स्थानों से मिली हैं।[२] मण्डोर रेल्वे स्टेशनके निकट पहाड़ी पर शिव समेत गणपति और मातृकाओं की मूर्तियां भी दर्शनीय हैं। महाराजा जयपुरके संग्रहमें गणपतिनृत्यमुद्रामें सप्तमातृकासहित शिव उल्लेखनीय हैं।[१] अटरूमें भी इसी तरह गणपति की अनेक प्रकारकी प्रतिमाएँ मिली हैं, जो गणपति पूजाके विशेष प्रचार की द्योतक हैं। कहीं स्थानक, कहीं आसीन, कहीं शक्तियुत, तो एक स्थानमें चतुर्बाहु रूपमें ये गरुडासीन भी हैं।[३]

स्कन्द, कुमार या कार्त्तिकेय भी शैववर्गमें हैं। गुप्तकालमें स्कन्दके पूजनका बहुत अधिक प्रचार था। दो गुप्त सम्राट् स्कन्द और कुमार इन्हींके नामसे अभिहित हैं। कालिदासने इन्हींके गौरवगानमें कुमारसम्भव की रचना की। यौधेयोंके ये इष्टदेव थे। अमरकोशने गणपतिके आठ तो स्कन्दके सतरह नाम दिए हैं। किन्तु प्रतिहारकालमें स्कन्दकी यह जनप्रियता बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी। किसी प्रतिहार सम्राट्ने स्कन्दको इष्टदेवके रूपमें ग्रहण न किया। उपमितिभवप्रपञ्चा, यशस्तिलक, बृहत्कथाकोश, जिनेश्वरीकथाकोश प्रकरण आदि ग्रंथोंमें उनका स्थान नगण्य है। रोहीतक किसी समय स्कन्दका मुख्य स्थान था। किन्तु यशस्तिलकने स्कन्दकी गौणताके कारण यहाँ चण्डमारीको प्रतिष्ठित कर दिया है। कुवलयमालामें अनेक अन्य देवताओंके साथ स्कन्दका नाम है। स्कन्दपुराणके कौमारी खण्डमें स्कन्द की पर्याप्त प्रशंसा वर्तमान है; किन्तु उसमें भी स्कन्दके पूजनादिका विशेष विधान और वर्णन नहीं है। हरिभद्रसूरिने कुमारकी उत्पत्ति की कथा देते हुए उसका स्थान दक्षिण देशके अरण्यमें रखा है (३.८३)। शायद इससे यह अनुमान करना असंगत न हो कि हरिभद्रके समय स्कन्दकी पूजाका प्रचार मुख्यतः दक्षिणमें था। स्कन्दकी गुप्तकालीन मूर्तियां अवश्य राजस्थानमें प्राप्य हैं।

सूर्यकुलीन देवोंमें रेवन्तका उल्लेख कुवलयमालामें है। बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें रेवन्त की मूर्तिका विधान है। कालिकापुराणके अनुसार इनका पूजन द्वारके निकट पूर्ण जलपात्र रखकर भी किया जाता। जलपात्रमें उनकी उपस्थिति मान ली जाती। जनताका विश्वास था कि आकस्मिक विपत्तियोंके समय रेवन्त विपद्गत व्यक्तियोंकी रक्षा करते हैं। इसलिए यह समुचित ही था कि समुद्रमें तूफान आनेपर कुवलयमाला कथाके जलयात्रियोंने रेवन्तकी प्रार्थना आरम्भ की। अमरकोशमें रेवन्तका नाम नहीं है। अन्यत्र इन्हें सूर्य और संज्ञाका पुत्र और गुह्यकोंका राजा कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि प्रथमतः मणिभद्रादिकी तरह ये भी जनदेव थे और समयानुक्रमसे सूर्यकुलमें परिगणित हुए।

---

१. पृष्ठ, २, १४, २५६।

२. देखें डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवालके लेख, मरुभारती, ८, २, २९, आदि; जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, २८, पृष्ठ ४९७ आदि।

३. मरुभारती, ८, १, ६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार अनेक अन्य देव हैं। जिनके लिए जैन ग्रंथोंमें व्यन्तर संज्ञा प्रयुक्त है। भारतमें आजकल मदन (कामदेव) की पूजा नहीं होती; किन्तु प्रतिहारकाल तक इस पूजाका पर्याप्त प्रचार था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी मदन त्रयोदशीके नामसे प्रसिद्ध थी। मदन पुष्पधन्वाके नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु उपमितिभवप्रपञ्चादिसे प्रतीत होता कि मदन इक्षुधन्वा भी थे। मदनके पूजागृहका तोरण इक्षुका बना होता, और उसमें अशोकके नव-पल्लवोंकी बन्दनवार होती। अगर, सुगन्धित पुष्प और कर्पूरसे स्थान सुवासित रहता और भक्तगण इक्षुरस-पूर्ण भाण्ड, शालिधान्य और अनेक मिष्टान्न उपहारके रूपमें समर्पित करते। कन्याएँ सुन्दर वरकी अभिलाषासे और विवाहित स्त्रियां अपने सौभाग्यकी रक्षाके लिए मदनका पूजन करतीं।[1] भारतीय साहित्य मदनपूजनके वर्णनसे पूर्ण है। कर्कोटनगरसे प्राप्त मकरध्वजीय कामदेव और रतिका उल्लेख डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवालने किया है।

व्यन्तरोंमें यक्ष मुख्य हैं। इनकी पूजा भारतमें प्राचीन समयसे चली आ रही है। अनेक जैन कथाओंमें यक्ष पूजाका वर्णन है। ज्ञानपञ्चमीसे प्रतीत होता है कि मथुरामें मणिभद्रके पूजनका पर्याप्त प्रचार था। मणिभद्रकी धार्मिक जनोंपर पर्याप्त कृपा रहती है। समराइच्चकहामें एक विचित्रप्रकृतिक क्षेत्रपालका वर्णन है जिसे छोटी-मोटी दुष्टता करनेमें ही आनन्द आता। जिनेश्वरीय कथाकोशमें क्षेत्रपाल द्वारा आवेश और पउमसिरिचरियमें क्षेत्रपालकी नटखट वृत्तिका वर्णन है। राजस्थानमें क्षेत्रपाल अब भी पूजित है; पर उसके रूपमें कुछ अन्तर अवश्य हुआ है।

यक्षोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण कुबेर थे। चित्तौड़ क्षेत्रसे प्राप्त उदयपुर म्यूज़ियमकी कुबेर प्रतिमाका शिल्प-सौष्ठवमें अद्‌भुत है। इसके मुकुट और मस्तककी जिनमूर्ति हमें कुवलयमालाके वर्णनका स्मरण दिलाती है। कुमार कुवलयचन्द्रको वनमें ऐसी ही एक यक्षप्रतिमा मिलती है जिसके मुकुटमें मुक्ताशैल विनिर्मित अर्हत्-प्रतिमा है। उसे नमस्कारकर कुमार सोचने लगता है "अरे, यह आश्चर्य है कि दिव्य यक्षप्रतिमाके मस्तकपर भगवान्‌की प्रतिमा है। या इसमें आश्चर्य ही क्या है कि दिव्य (देवादि) भी भगवान्‌को मस्तकपर धारण करें। वे तो इस तरह धारणके योग्य ही हैं।"[2] कुबेरकी ऐसी मूर्तियां अन्यत्र अब तक नहीं मिली हैं। किन्तु कुवलयमालाकथाके वर्णनसे सम्भावना की जा सकती है कि ऐसी कुछ मूर्तियां आठवीं शताब्दीके राजस्थानमें रही होंगी।

अजमेर म्यूज़ियममें कुबेरकी मूर्तियां हैं। इनमें एक ललितासनमें स्थित है। इसके दाहिने हाथमें बिजोरा और बांएँमें लम्बी थैली है।[3] म्यूज़ियमकी दूसरी कुबेर मूर्ति अढ़ाई दिनके झोंपड़ेसे प्राप्त हुई है। इसमें कुबेर प्रफुल्ल कमलपर खड़े हैं। नरहड आदि राजस्थानके अन्य स्थानोंसे भी कुबेरकी प्रतिमाएँ मिली हैं।

कुवलयमालाकथामें यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, किन्नर, किंपुरुष, गन्धर्व, महोरग, गरुड़, नाग, अप्सरस् आदि अनेक अन्य व्यन्तरोंका निर्देश भी है जिनका सामान्यजन स्वार्थसिद्धिके लिए पूजन करते। किन्तु इस आधारपर उनके विषयमें कुछ अधिक कहना असम्भव है। नागपुर, अहिच्छत्रा, अनन्तगोचर आदि नामोंके आधारपर यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन राजस्थानमें नागपूजाका पर्याप्त प्रसार रहा होगा।

नवग्रह पूजनका इस कालमें रचित धार्मिक साहित्यमें विधान है। भरतपुर क्षेत्रसे प्राप्त नवग्रहोंमें

---

१. विशेष विवरणके लिए Rajasthan Through the Ages देखें।

२. पृ० ११५।

३. रिचर्चर्ट, १. २३-२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केतुका अभाव[1] और बघेरासे प्राप्त नवग्रहोंमें उसकी विद्यमानता है। अढ़ाई दिनके झोंपड़ेसे सप्तनक्षत्रयुक्त एक विशिष्ट फलककी प्राप्ति हुई है।[2] इसमें सातनक्षत्र—मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, और विशाखा सुखासनमें स्थित हैं; और इसी पर काल, प्रभात, प्रातः, मध्याह्न, अपराह्ण और संध्या उत्कीर्ण हैं। शिल्प और उत्कीर्ण मूर्तियोंकी दृष्टिसे यह फलक अद्वितीय है।

अन्य अप्रधान हिन्दू देवताओंमें हम दिक्पालोंकी गणना कर सकते हैं। नरहड़से वायु और वरुणकी उत्कीर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं जो प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे ध्यानमें रखने योग्य हैं। दिनप्रतिदिन नवीन साहित्यके प्रकाश और पुरातत्त्व विभागके शोधकार्यसे हमारा देव और देवयोनिविषयक ज्ञान बढ़ रहा है। विष्णु, महेश्वर, सूर्य, अर्हत् आदिके विषयकी विपुल सामग्री छोड़कर हमने इस लेखमें केवल अप्रधान देवोंके विषयमें कुछ शब्द लिखे हैं। विषयकी पूर्णता इस विषयके विद्वानों द्वारा हो सकेगी।

भीनमालमें चण्डीनाथ-मंदिरकी बावलीके सामनेके चबूतरे पर आसवपेयी कुबेरकी प्रतिमा है जिसका समय डॉ० एम० आर० मजमुंदारके अनुसार सातवीं और आठवीं शताब्दीके बीचमें होना चाहिए। ओसियामें पिप्पलाद माताके मुख्य मंडपके सामने चबूतरे पर महिषमर्दिनी, गणेश और कुबेरकी बृहत्काय प्रतिमाएँ हैं। सकराय माताके सबसे प्राचीन अभिलेखमें धनद यक्षके आशीर्वादकी कामना की गई। भटूंदमें भी ओसियांकी सी कुबेरकी कुम्भोदर मूर्ति वर्तमान है। बांसीसे प्राप्त यक्ष प्रतिमा भी प्रायः सातवीं आठवीं शताब्दीकी है। अनेक अन्य यक्ष और कुबेर प्रतिमाओंके विशेष विवरण के लिए डॉ० रत्नचन्द अग्रवालका इसी सम्बन्धमें इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १९५७ में प्रकाशित लेख पठनीय है।

कृष्णनगर, दिल्ली
३१. ३. १९६४

●

१. वही, १.२०।
२. वही, २. ११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org